



International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2015; 1(4): 76-79
© 2015 IJSR
www.sanskritjournal.com
Received: 08-04-2015
Accepted: 09-05-2015

पुशविन्दर कुमार
(शोध छात्र) स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग
विश्वविद्यालय जम्मू, १८०००६

वैदिक-साहित्य में षड्वेदांग पर एक आध्यात्मिक दृष्टिकोण

पुशविन्दर कुमार

वैदिक-साहित्य के चतुर्वेद अर्थात् ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद, ब्राह्मण- ग्रन्थ, अरण्यक-ग्रन्थ एवं उपनिषद-ग्रन्थों के बाद वेदांगों का स्थान आता है। वेदांग किसे कहते हैं? सर्वप्रथम इसके बारे में जान लेना अति आवश्यक है। वेदांग शब्द दो शब्दों के मेल से मिलकर बना है-वेद+अंग। वेद शब्द संस्कृत की विद्धातु (विद्-ज्ञाने) में घञ् प्रत्यय करने से वेद शब्द की निष्पत्ति होती है। जिसका अर्थ है-ज्ञान। इस प्रकार वेदांग का अर्थ है-वेदस्य अङ्गानि अर्थात् वेद के अंग। अंग का अर्थ है-अंग्यन्ते ज्ञायन्ते एभिरित अंगानि अर्थात् वे उपकारक तत्त्व जिनसे वस्तु के स्वरूप का बोध हो। वेदों के वास्तविक अर्थ के ज्ञान के लिए जिन साधनों की आवश्यकता होती है, उन्हें वेदांग कहते हैं। वेदांग कितने हैं सर्वप्रथम वेदांगों के भेदों का वर्णन मुण्डकोपनिषद में प्राप्त होता है कि - तत्तापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पोऽव्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति।¹ अर्थात् वेदांगों का वर्णन वेदों के बाद ही हुआ है। वेदांग छः हैं-

शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दसां चयः।
ज्योतिषामयनं चैव वेदाङ्गानि षडेव तु।²

वेदांगों के उद्भव का मूल कारण वेद है। वेदों की महत्त्वता व्यक्त करना ही इनका परम उद्देश्य है। पणिनीय शिक्षा में वेद पुरुष के छःअंगों के रूप में छःवेदांगों का वर्णन किया गया है कि-

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तो कल्पोऽथ पठयते।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते।।
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
तस्मात् साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते।³

अर्थात् छन्द वेद पुरुष के पैर है, कल्प वेदपुरुष के हाथ है, ज्योतिष नेत्र है, निरुक्त श्रोत्र है, शिक्षा नासिका एवं व्याकरण वेद रूपी पुरुष का मुख है। षड्वेदांगों में किस वेदांग का क्या-क्या महत्त्व है इस का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार से है-

शिक्षा:- षड्वेदांगों में सर्वप्रथम वेदांग शिक्षा का स्थान है। शिक्षा का अर्थ है-स्वरः वर्णादुच्चारणप्रकारो यत्र शिक्ष्यते उपदिश्यते सा शिक्षा। अर्थात् स्वर, वर्ण आदि के उच्चारण की शिक्षा देना ही शिक्षा है।⁴ शिक्षा शास्त्र में मुख्य रूप से छः बातों पर विशेष ध्यान दिया गया है। वे हैं- वर्ण, स्वर, माता, बल, साम एवं मात्रा; बलम, साम, संतानः, इत्युक्तः शिक्षाध्यायः⁵। वेद-पाठ की शुद्धता के लिए इन विधि-विधानों की पूर्ण जानकारी होना परमावश्यक बतायी गई है। क्योंकि इनके अभाव में आरोह एवं अवरोह पर ध्यान न देने से मंत्रों का उच्चारण अशुद्ध हो जाता है। इनका कतिपय विवरण इस प्रकार से है:-

क) वर्णः- वह छोटी से छोटी इकाई अर्थात् ध्वनि जिसके टुकड़े नहीं किए जा सकते हो, उसको वर्ण कहते हैं। संस्कृत में प्रयुक्त सबसे छोटी ध्वनि-अ,आ,ई,उ,क,ख,ग आदि। यही अभिव्यक्त ध्वनियां वर्ण कहलाती हैं। वर्णों के समुच्चय या समुदाय को वर्णमाला कहते हैं। वर्णमाला वर्णों की वह माला है जिन्हें क्रम बद्ध रूप में रखा गया है। विश्व की सभी भाषाओं में संस्कृत भाषा की वर्णमाला एक वैज्ञानिक वर्णमाला मानी जाती है। क्योंकि संस्कृत वर्णमाला में मानव मुँह से निकलने वाली हर प्रकार की ध्वनि को लिपिबद्ध करने की क्षमता है। इसके अतिरिक्त संस्कृत वर्णमाला पूर्णतः वैज्ञानिक व समृद्ध वर्णमाला मानी जाती है। संस्कृत वर्णमाला में 63 वर्ण हैं। किन्तु यदि संवृत ष् से पृथक माने तो 64 वर्ण हो जाते हैं। अतः शुद्ध उच्चारण के लिए वर्णों का विशेष महत्त्व है।

Correspondence

पुशविन्दर कुमार
(शोध छात्र) स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग
विश्वविद्यालय जम्मू, १८०००६

ख) स्वरः— स्वरों का उच्चारण करते समय उसमें स्वराघात पर विशेष ध्यान देना चाहिए ताकि स्वराघात से शब्दों के अर्थों का सटीक से निर्धारण हो सके। स्वर तीन प्रकार के होते हैं इसका वर्णन लघुसिद्धान्तकौमुदी के संज्ञा प्रकरण में दिया गया है कि — उदात्त (**उच्चैरुदात्तः**) तालुदि सभाग स्थान के उर्ध्वभाग से उच्चरित स्वर षडादात्त कहलाता है। अनुदात्त (**नीचैरनुदात्तः**) तालु आदि सभाग स्थानों के अधोभाग से उच्चरित स्वर अनुदात्त संज्ञक होता है। समाहार (**समाहारः स्वरितः**) जिस स्वर में उदात्त एवं अनुदात्त दोनों ही गुणों का सम्मिश्रण होता है वह स्वरित कहलाता है ⁶।

ग) मात्राः— स्वरों के उच्चारण में आने वाले समय को मात्रा कहते हैं। मात्राएँ तीन प्रकार की होती हैं—ह्रस्व, दीर्घ एवं प्लुत। उकालोऽजह्रस्वदीर्घप्लुतः।

घ) ह्रस्वः— जिस स्वर के उच्चारण में एक मात्रा का समय लगे उसे ह्रस्व कहते हैं।

ङ) दीर्घः— दीर्घ स्वर में यदि स्वर के उच्चारण में द्विगुण समय लगे उसे दीर्घ स्वर कहते हैं।

च) प्लुतः— जिस स्वर के उच्चारण में त्रिगुणा समय लगे उसे प्लुत कहते हैं।

**एक मात्रो भवेद ह्रस्वो द्विमात्रो दीर्घ उच्यते।
त्रिमात्रास्तु प्लुतो ज्ञेयो व्यंजनं चार्धमात्रकम्।⁷**

बलः— वर्णों के उच्चारण में होने वाले प्रयत्न तथा उसके उच्चारण स्थान को बल कहते हैं। प्रयत्न दो प्रकार का होता है— बाह्य एवं आभ्यन्तर। बाह्य एव आभ्यन्तर।

बाह्य प्रयत्नः— बाह्य प्रयत्न ग्यारह प्रकार के होते हैं। यथा— **बाह्य प्रयत्नस्त्वेकादशधा।**

विवारः संवारः श्वासो नादो घोषो षोष ल्यप्राणो महाप्राण उदात्तानुदात्तः स्वरितश्चेति।⁸

आभ्यन्तर प्रयत्नः— आभ्यन्तर प्रयत्न पाँच प्रकार के होते हैंः—**स्पृष्टेषत्स्पृष्टेषद् विवृत—संवृतभेदात्।⁹**

ङ) सामः— पाणिनीय शिक्षा के अनुसार वर्णों का स्पष्ट उच्चारण हो किसी भी वर्ण को दवाकर न बोले, बहुत शीघ्रता से न बोले, स्वर एवं अर्थ—ज्ञान से सहित प्रत्येक वर्ण का शुद्ध उच्चारण करें ¹⁰।

च) संतानः— संहिता पाठ में प्रयुक्त शब्दों में सन्धि—नियमों को लगाना।

अतः शिक्षा में छःअंगों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यदि वेद—पाठ का शुद्धोच्चारण एवं स्वर प्रक्रिया पर विशेष ध्यान न दिया जाए तो जिस इष्ट प्राप्ति के लिए वेद—पाठ किया जा रहा है तो उस इष्ट की प्राप्ति होना असम्भव ही नहीं अपितु उसका फल अनिष्टकारी हो जाता है। इसके संदर्भ में यास्क ने अपने निरुक्त में लिखा है कि—**मंत्रहीनो स्वरतो वर्णतो मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह। स वागव्रजो यजमानं हिनस्ति, यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्।¹¹**

2 कल्पः— शिक्षा के बाद षड्वेदांगों में कल्पसूत्रों का द्वितीय स्थान है। कल्प सूत्र दो शब्दों के मेल से मिलकर बना है—कल्प+सूत्र। कल्प का अर्थ है—विधि, नियम, न्याय और कर्म। सूत्र का अर्थ है—संक्षेप। इस प्रकार कल्पसूत्र का अर्थ है। जिनमें विधि—विधानों, न्याय—नियमों, रीति—व्यवस्थाओं, कर्मानुष्ठानों और धर्म—आज्ञाओं का संक्षिप्त सारयुक्त प्रयोग और निर्दोष विवेचन सम्मिलित हो उसे कल्पसूत्र कहते हैं। सायण ने भी इसी बात का प्रतिपादन किया है कि **कल्प्यते समर्थ्यते यागप्रयोगोऽत्र, इति व्युत्पत्तेः।¹²**

विष्णुमित्र ने अपने ग्रन्थ में कल्प की व्याख्या करते हुए लिखा है

कि—कल्पो वेदविहितानां कर्मणामनुपूर्णेण कल्पना शास्त्रम्।¹³
कल्पसूत्रों को चार भागों में विभक्त किया गया है।

1. श्रौत्रसूत्र
2. गृह्यसूत्र
3. धर्मसूत्र एवं
4. शुल्बसूत्र

क) श्रौत्रसूत्रः— इसमें वैदिक यज्ञों का क्रमबद्ध वर्णन किया गया है। प्राचीन ग्रन्थों के उल्लेख से ज्ञात होता है कि 1130 मंत्र संहिताओं की भाँति उनके उतने ही कल्पसूत्र थे। किन्तु सम्प्रति केवल 40 कल्पसूत्र ही हमें उपलब्ध होते हैं इन यज्ञों में प्रमुख ये हैं— दर्श यज्ञ, पौर्णमास यज्ञ, सोमयज्ञ, वायपेयी यज्ञ, सौत्रामणी यज्ञ, अश्वमेध यज्ञ आदि। ऋग्वेद के प्रमुख श्रौत्रसूत्र में आवशलायन और शाखायशुक्ल यजुर्वेदीय में कात्यायन श्रौत्रसूत्र, कृष्ण यजुर्वेदीय में बौधायन, आपस्तम्ब, लाट्यायन, दह्यायण और जैमिनीय श्रौत्रसूत्र। अथर्ववेदीय में वेतान श्रौत्रसूत्र।

ख) गृह्यसूत्रः— गृह्यसूत्रों में गृहस्थ—जीवन से सम्बन्धित धार्मिक क्रिया—कलापों का प्रतिपादन किया गया है। गर्भाधान से लेकर अन्तेष्टि तक षोडश संस्कारों के क्रिया—कलापों का वर्णन किया गया है। साथ में ही पाँच महायज्ञों एवं सात गृह्ययज्ञ में— पितृयज्ञ, पावर्ण यज्ञ, अष्टकयज्ञ, श्रावणीयज्ञ, अश्वायुजीयज्ञ, आग्रह्ययणी यज्ञ और चैत्री यज्ञ है ¹⁴।

ग) धर्मसूत्रः— धर्मसूत्रों में वैयक्तिक तथा पारिवारिक पवित्रता एवं कर्मनिष्ठ पर विशेष बल दिया गया है। धर्मसूत्र में नीति, धर्म, रीति प्रथाओं चारों वर्णों। अर्थात् ब्राह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं सन्यास, चारों आश्रमों के द्वारा सामाजिक नियमों का वर्णन किया गया है।

घ) शुल्बसूत्रः— शुल्ब सूत्र का सम्बन्ध यज्ञ की वैदिक के निर्माण से सम्बन्धित है जिसमें यज्ञवेदी का नाप एवं निर्माण आदि नियमों का वर्णन किया गया है। शुल्ब सूत्रों में प्रमुखः— कात्यायन शुल्बसूत्र, बौधायन, आपस्तम्ब एवं मानव शुल्बसूत्र।

3. व्याकरणः— मुखं व्याकरणं स्मृतम् व्याकरण को वेद पुरुष का मुख माना गया है। वेद मन्त्रों को सुरक्षित रखना और उनसे गुरु गम्भीर ज्ञान को अभिव्यक्त करना ही व्याकरण का परम उद्देश्य है। व्याकरण का अर्थ है— **व्याक्रियन्ते विचिच्यन्ते शब्दा अनेनेति व्याकरणम्।** अर्थात् जिसके द्वारा प्रकृति प्रत्ययों का विवेचन किया जाता है। यजुर्वेद में भी वर्णन मिलता है किः—

**दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत् सत्यानृते प्रजाप्रतिः।
अश्रद्धामनृतेदधाच्छद्वासत्ये प्रजापतिः।¹⁵**

विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम भाषा रही है इतिहास के द्वारा ज्ञात होता है कि विचारों एवं भाषा का माध्यम एक जैसा कभी नहीं रहा है। उनमें प्रायः परिवर्तन होता रहा है। क्योंकि उस समय हमारे पास सम्पन्न भाषा नहीं थी। लेकिन आज हमारे पास सम्पन्न भाषा है जिसके कारण हम भाषा एवं विचारों को जोड़ सकते हैं ऐसी भाषा को व्याकरण नाम से जाना जाता है। व्याकरण शास्त्र के बारे में निर्णय कर पाना असम्भव है। व्याकरण — शास्त्र के आचार्य महाभाष्कार पतंजलि ने व्याकरण के पाँच प्रयोजन बताए हैं— **रक्षोहागमलध्वसंदेहाः प्रयोजनम्।¹⁶** अर्थात् रक्षा, ऊहा, आगम, लघु एवं सदेश।

क) रक्षाः— वेदों की रक्षा करना।

ख) ऊहाः— यथास्थान विभक्तियों आदि में परिवर्तन करना।

ग) आगमः— निष्काम भाव से वेदादि का अध्ययन करना।

घ) लघुः— संक्षेप में शब्द कहना।

ङ) सन्देहः— अगर किसी विषय को लेकर आपके मन में सन्देह

उत्पन्न होता है। तो उसका निराकरण करना परमावश्यक है। अतः संक्षेपता के रूप में हम यह कह सकते हैं कि वेदांगों में व्याकरण का महनीय स्थान है। बिना व्याकरण के किसी भी वर्ण का शुद्ध ज्ञान होता असम्भव है। जैसे कि पाणिनीय-शिक्षा में कहा गया है कि मुखं व्याकरणं स्मृतम् यह उचित अत्यन्त सार्थक सिद्ध होती है। क्योंकि जिस प्रकार शरीर के सभी अङ्ग सम्पन्न होने पर भी यदि मुख नहीं है तो वह शरीर किसी भी योग्य नहीं होता, वैसे ही व्याकरण की स्थिति है।

4. निरुक्तः- वेदों के छःअंगों में निरुक्त का स्थान अद्वितीय है। निरुक्त का किसी वेदांग विषय से सम्बन्धित अर्थ न होकर बल्कि सम्भवतः विषय का सूचक है। जिस प्रकार शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छन्द एवं ज्योतिष स्वतन्त्र शास्त्र के विषय हैं वैसे ही निरुक्त भी स्वतन्त्र शास्त्र का अंग है। सम्प्रति यास्क कृत निरुक्त ही इस विषय का प्रमाणिक ग्रन्थ उपलब्ध है। यह निघण्टु नामक वैदिक कोष पर आधारित है तथा उसी का व्याख्यान ग्रन्थ है। इसलिए इसको वेदांग के रूप में ग्रहण किया जाता है। यास्क ने वैदिक देवतावाचक शब्द, अग्नि, इन्द्र, वरुण, आदि निर्वाचनात्मक मानवकर इससे सम्बन्धित मन्त्रों का चार भागों में बांटा है जिनमें आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक एवं अधियज्ञ।

यास्क ने स्वयं निरुक्त में अपने पूर्ववर्ती अठारह निरुक्तकारों कोशकारों, व्याकरणों एवं निघण्टुकारों के नामों का उल्लेख किया है। जिनमें:-

- | | | |
|--------------|----------------|-------------------|
| 1. आग्रायण | 2. औदुम्बरायण | 3. और्यनाभ |
| 4. काथक्य | 5. क्रोष्टुकि | 6. गार्ग्य |
| 7. गालब | 8. चर्मशिरा | 9. तैटीकि |
| 10. शतवलाक्ष | 11. शाकपूणि | 12. स्थौलाष्टतीति |
| 13. औपमन्यव | 14. शाकटायन | 15. शाकल्य |
| 16. कौत्स | 17. और्यवाम एव | 18. वार्षायणि |

निघण्टु पाँच अध्यायों में विभक्त है। निघण्टु के प्रथम तीन अध्यायों में पर्यायवाची शब्द हैं जैसे पृथ्वी वाचक, मेघ वाचक, वाणी वाचक, जल-वाचक। यास्क के प्रथम इन्हीं तीन अध्यायों में पर्यायवाची शब्दों की व्याख्या एवं स्पष्टीकरण अपने निरुक्त में दिया है जिसके के कारण इसे नैघण्टुक काण्ड कहते हैं। निघण्टु के चतुर्थ अध्याय में कठिन एवं अस्पष्ट वैदिक शब्द दिए गए हैं इन अस्पष्ट एवं कठिन शब्दों की व्याख्या निरुक्त में पाँच से छः अध्याय में दी गई है जिसे नैगमकाण्ड या ऐकपदिक के नाम से जाना जाता है। निघण्टु के पाँचवें अध्याय में देवता- वाचक शब्दों का विवरण दिया गया है जो निरुक्त के सात से लेकर बारह अध्यायों तक शब्दों की व्याख्या की गई हैं। इसे देवताकाण्ड भी कहते हैं। निरुक्त के 13 वें अध्याय में अक्षर, जातवेदस, सोम आदि का वर्णन मिलता है।

निघण्टु निरुक्त से सर्वथा भिन्न वैदिक शब्द कोष था, जिस पर निरुक्त नामक यास्क ने भाष्य लिखा। इन दोनों की विभिन्नता के पश्चात् भी सायण ने ऋग्वेद भाष्य भूमिका में निघण्टु को निरुक्त कहा है। निरुक्त में कौन सा शब्द किस अर्थ से आरुढ़ है इसका प्रतिपादन किया गया है कि:-

**वर्णांगमो वर्णविपर्ययश्च द्वौ चापरौ वर्णविकारनाशौ ।
घातोस्तादर्थतिशयेन योगः यदुच्चते पंचविधं निरुक्तम् ।।¹⁷**

5. छन्दः- छन्द पादौ तु वेदस्य अर्थात् वेद पुरुष में छन्द को पैर की संज्ञा दी गई है। वेद मन्त्रों की विशुद्धता के लिए लय बद्ध गति के लिए एवं विशुद्ध ज्ञान के लिए छन्द शास्त्र की आवश्यकता परमावश्यक है। जिस प्रकार फूलों की माला में नाना प्रकारों के पुरुष संघोए जाते हैं उसी प्रकार वेद मन्त्रों को भी छन्दों में संघोया जाता है। बृहद् देवता में वर्णन मिलता है कि बिना छन्द ज्ञान के जो वेद मन्त्रों का अध्ययन करता है वह घोर पापी कहलाता है-

**अविदित्वा ऋषिञ्छन्दो दैवतं योगमेव च ।
योऽध्यापयेज्जपेद्वापि पापीयान् जायते तुसः ।।¹⁸**

इसी तथ्य का प्रतिपादन करते हुए वार्तिकार कात्यायन ने सर्वानुक्रमणी में लिखा है कि-यो ह अविदितार्षेच्छन्दो-दैवत-ब्राह्मणेन मन्त्रेण याजयति वा अध्यापयति वा स्थाणुं वर्द्धति गर्ते वा पात्यते प्रमीयते वा पापीयान् भवति। अर्थात् बिना ऋषि, देवता एवं छन्द को जाने जो मन्त्रों का अध्ययन-अध्यापन, यज्ञ करना आदि करता है उसके प्रत्येक कार्य निष्फल हो जाते हैं उसे अपनी इष्ट फल की प्राप्ति भी नहीं होती। वेद मन्त्रों के साथ छन्दोच्चारण का कितना धनिष्ट सम्बन्ध है इसका निर्णय छन्द की व्युत्पत्ति से ही स्पष्ट हो जाता है। यास्क ने अपने निरुक्त में छन्द शब्द की व्युत्पत्ति छद् धातु से छन्दासि छादनात् अर्थात् छन्द भावों को आच्छादित करना, आवृत करना। छन्दासि छादनात् अर्थात् छन्द भावों को आच्छादित करके समष्टि रूप प्रदान करते हैं। व्याकरण शास्त्र के अनुसार- **छन्दयति आह्लादयति छन्दयतोऽनेन वा छन्दः-¹⁹**

कात्यायन के अनुसार-यदक्षरपरिमाणं तच्छन्दः अर्थात् कहने का तात्पर्य है कि संख्या विशेष में वर्णों की सत्ता छन्द है। क्योंकि प्रत्येक वर्णों में संख्या निर्धारित है।

छन्दों के प्रथम आचार्य पिंगल माने जाते हैं ये पाणिनी के छोटे भाई थे। इन्होंने छन्दः सूत्र नामक कृति की रचना की है जिसमें आठ-अध्याय हैं। वेदों में मुख्य रूप से सात छन्दों का प्रयोग मिलता है जिनको तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है-

क) तीन पादों वाले छन्द-गायत्री एवं उष्णिक।

ख) चार पादों वाले छन्द-अनुष्टुप, त्रिष्टुप, बृहती एवं जगती।

ग) पंच पादों वाले छन्द-पंक्ति।

छन्द को दो भागों में विभक्त किया गया है जिनमें प्रथम मात्रिक एवं वर्णिक छन्द।

क) मात्रिक छन्दः- जिनकी गणना मात्राओं के अनुसार हो उसे मात्रिक छन्द कहते हैं

ख) वर्णिक छन्दः- जिनकी गणना वर्णों के आधार पर हो उसे वर्णिक छन्द कहते हैं।

6. ज्योतिषः- षड्वेदांगों में ज्योतिष को अन्तिम वेदांग के रूप में स्वीकार किया गया है। पाणिनीय शिक्षा में ज्योतिष को वेद पुरुष की नेत्रों से संज्ञा दी गई है-**ज्योतिषामयनं चक्षुः।**

जिस प्रकार सुन्दर आकृति युक्त देह निष्पन्न होने पर यदि कोई प्राणि नेत्रों की दृष्टि से अबाध्य है तो उसका सौन्दर्य व्यर्थ हो जाता है। उसी प्रकार वेदांग में ज्योतिष का महत्त्वपूर्ण स्थान है। जितने भी क्रिया कलाप सम्पादित किए जाते हैं उनके शुभ मुहुर्त-निर्धारण के लिए जिस विषय की आवश्यकता हुई उसे ज्योतिष के नाम से अभिहित किया जाता है जैसे कि वेदांग ज्योतिष में वर्णन मिलता है कि:-

**वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः कालानि पूर्वा विहिताश्चः यज्ञाः ।
तस्मादिदं काल विधानं शास्त्रं यो ज्योतिष वेद से वेद यज्ञम् ।।²⁰**

यज्ञ का निष्पादन करके वाला होता यह सोचता है कि यज्ञ का आरम्भ एवं समाप्ति काल दोनों ही अनुकूल स्थिति में हो अर्थात् कहने का तात्पर्य यह है कि जिस उपलक्ष्य के लिए यज्ञ का निष्पादन किया जा रहा है उससे उसे अभिष्ट फल की प्राप्ति हो न कि उससे उसे अनिष्टकारी फल की। ग्रहों के अनुकूल एवं प्रतिकूल ज्ञान के लिए जिस वेदांग की आवश्यकता हुई उसे ज्योतिष कहते हैं।

ज्योतिष के चक्र में बारह राशियां एवं नवग्रह का विवरण मिलता है।²¹ प्रत्येक राशि के प्रति आकर्षण एवं विकर्षण दोनों तत्त्वों से जुड़ी है-**समान व्यसने तु सौख्यम्।**

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि वैदिक-साहित्य में षड्वेदांग का स्थान अति महत्त्वपूर्ण है। यह प्राचीन ऋषि-मुनियों के अथाह-परिश्रम का ही फल है। जिसको ऋषि-मुनियों ने गुरु-शिष्य

परम्परा से जीवित रखा। प्राचीन ऋषियों ने सभी शास्त्रीय चिन्तनों का केन्द्र वेद को माना है अतएव जिसके कारण षड्वेदांगों की कल्पना की गई है।

संदर्भ—सूची

1. मुण्डकोपनिषद् 1-1-5
2. वैदिक-साहित्य एवं संस्कृति पृ. 129
3. पा.शिक्षा श्लो. 41-42
4. सायण ऋ.भाष्य पृ. 49.
5. तै उपनिषद् 1-2.
6. लघु सिद्धान्त कौ. संज्ञा सू 1-1-29. 30-31
7. लघु सिद्धान्त कौ. संज्ञा प्रकरण पृ.32
8. भाषा विज्ञान एवं भाषा शास्त्र पृ.166
9. लघुसिद्धान्तकौमदी पृ.38
10. पाणिनीय शिक्षा 31-33
11. निरुक्त अ. 8 पृ.112
12. सायण ऋ.भाष्य भूमिका
13. विष्णु कृत ऋक्-प्रति शाख्य की कृति पृ. 13-14
14. पूजा-प्रकाश पृ.
15. यजुर्वेद 19-77
16. महाभाष्य आ-1
17. संस्कृत साहित्य का सभिक्षात्मक इतिहास /
18. ऋक्-सुक्त संग्रह पृ. 27-28
19. वैदिक-साहित्य और संस्कृति पृ. 152
20. वेदांग ज्योतिष श्लोक 3
21. ऋग्वेद 1-164-11